Himalayan Journal of Social Sciences & Humanities
(A Peer Reviewed Journal of Society for Himalayan Action Research and Development)
ISSN: 0975-9891

वेदों में नाट्यकला

[1]अजीत पंवार, [2]मिथिलेश कुमार
[1]लोक कला एवं संस्कृति निष्पादन केन्द्र हे0 न0 ब गढ़वाल विश्वविद्यालय श्रीनगर गढ़वाल
[2]संस्कृत विभाग, हे0न0ब0 गढ़वाल विश्वविद्यालय परिसर,पौडी परिसर

Manuscript Info

Manuscript History

Received: 09.06.2016
Revised: 11.07.2016
Accepted: 12.08.2016

सारांश–

वेद विश्व के सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। इन्हे अपौरूषेय भी कहा गया है। अखिल ब्रहमाण्ड का ज्ञान वेदों में सन्निहित है।अतः नाट्य भी इससे अछूता नहीं रह सकता। भारत की नाट्यकला का प्रादुर्भाव भी वैदिक युग से हो चुका था। अतः वेदों के आधार पर नाटयकला का अन्वेषण सम्यक् ही जान पड़ता है।

कुंजी शब्द–

अक्षुण्ण, उपजीव्य, वर्तुलाकर

भारत के ही नहीं, किन्तु प्राचीन विश्व के इतिहास में वेदों का स्थान अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है।[1] सामान्यतया जो कुछ भी पुरातन है वही वेद है। वेद शब्द की प्रथम अवधारणा है प्राचीनता । वेद शब्द, पुरातनता के उपरान्त दूसरी अवधारण या अर्थ देते हैं पवित्रता। वह पाप, दुःख, दरिद्रता, राग,द्वेष, पाखण्ड, इन सभी प्रकार की अपवित्रताओं से निर्मुक्ति की राह दिखाने वाला है। इस दृष्टि से'कुरान' 'बाइबिल' या 'त्रिपिटक' की भांति वेद कोई धर्मग्रन्थ नहीं है। अपितु, वेद तो ज्ञान की वह राशि है, साहित्य का वह भण्डार है, जिसका प्रादुर्भाव अनेक शताब्दियों में, भारत के ऋषियों की अनेक पीढ़ियों द्वारा हुआ है। भारत के प्राचीन मनीषियों ने विश्व के आध्यात्मिक चिन्तन–विषयक चिरन्तन तत्त्वों को ही वेद में प्रस्तुत किया है।

भारतीय संस्कृति व उसके महत्त्व के लिए वेदों से परिचित होना नितान्त अनिवार्य है। जन्म के भी पूर्व से लेकर मृत्युपर्यन्त होने वाले सोलह संस्करों का अत्यधिक महत्त्व है। इन संस्कारों का सम्पादन वेद के मन्त्रों के बिना कदापि सम्भव नहीं है। हमारी दैनिक प्रार्थना, देवी–देवता, उपासना, अनुष्ठान, पर्व, यज्ञ, मान्यताएं तथा परम्पराएं सभी वेदों से प्रभावित है। परमधार्मिक श्रीलोकमान्य तिलक ने तो हिन्दूधर्म का लक्षण ही "प्रमाण्यवुद्धिर्वेदेषु" किया है।[2] अर्थात हिन्दू वही है जो वेदों की प्रमाणिकता को स्वीकार करता है। प्रमाणिकता ही नहीं व्यावहारिकता के लिए भी वेदों का ज्ञान हम भारतीयों के लिए अत्यधिक आवश्यक है। हमारी प्रत्येक धारणा एवं विचारणा का मूल स्त्रोत वेद ही है।

© SHARAD

विद् (जानना) धातु से निष्पन्न 'वेद शब्द' का अर्थ है ज्ञान। इस रूप में वेद अनन्त ज्ञान का अक्षुण्ण भण्डार माना जाता है। लौकिक व्यवहार में वेद शब्द से चार संहिताओं का बोध होता है जिनको क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अर्थवेद कहते हैं। ऋग्वेद एक धार्मिक ग्रन्थ है। उसमें विभिन्न देवी देवताओं की स्तुति की गई है, यथा अग्नि, वायु, इन्द्र, वरूण, मित्र, सविता, विष्णु, सरस्वती आदि।[3] ऋग्वेद से यज्ञ सम्बन्धी कर्मकाण्ड के पर्याप्त विकास का पता चलता है।[4] इस प्रकार ऋग्वेद में धर्म व दर्शन के अतिरिक्त राजनीति, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, गणितादि विद्या, ज्योतिशास्त्र, काव्य, अलंकार आदि विभिन्न शास्त्रों व विद्याओं के मौलिक सिद्धान्तों का उल्लेख है।[5] उक्त तीनों वेदों में सामवेद, ऋग्वेद से अधिक निकटता लिए हुए प्रतीत होता है, क्योंकि उसमें ऋग्वेद से बहुत से मंत्र लिए गए हैं। सामवेद में 1549 मंत्र है व समस्त वेद को दो अर्चिकाओं में बांटा गया है।[6] प्रथम अर्चिका में 6 प्रपाठक हैं जिनमें अग्नि, सोम व इन्द्र की स्तुति की गई है तथा दूसरी अर्चिका में 9 प्रपाठक हैं।[7] यजुर्वेद विशेष रूप से यज्ञ से सम्बन्धित है। इसमें अंक गणित, रेखा गणित आदि का भी उल्लेख आता है।[8] अथर्ववेद को बहुत से विद्वान अन्धविश्वास व जादूटोने का भण्डार मानते हैं।[9] इसमें राजनीति, समाज शास्त्र, आयुर्वेद आदि से सम्बन्धित ऊंचे सिद्धान्त भरे पड़े हैं।[10]

भारत की विभिन्न कलाओं का इतिहास भी बहुत पुराना है, जिसका प्रारम्भ वैदिक युग से होता है। इन कलाओं के विकास पर धर्म का बड़ा भारी प्रभाव पड़ा था। कला का उपयोग धर्म के तत्वों को समझने के लिए किया जाता था। वैदिक काल से ही वास्तुनिर्माण कला, गीत, नाटक, नृत्यादि का प्रारम्भ हो गया था।[11] । आचार्य धनंजय ने दशरूपक में काव्य पात्रों की अवस्थाओं के अनुकरण (अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्)को नाट्य कहा है। आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में नाट्य की परिभाषा देते हुए लिखा है किः 'जिसमें सातों द्वीपों के निवासियों, देवताओं, असुरों, राजाओं, ऋषियों और गृहस्थों आदि के कार्यों एवं चरितों का अनुकरण या प्रदर्शन हो, उसे नाट्य कहा जाता है–

देवानामसुराणां च राज्ञामथ कुटुम्बिनाम्।
ब्रह्मकर्षणां च विज्ञेयं नाट्यं वृत्तान्तदर्शकम्।।[12]

महेन्द्रविक्रम के भरतकोश में कहा गया है कि नटों द्वारा जो प्रदर्शित किया जाता है उसे नाट्य कहते है। आचार्य नन्दिकेश्वर ने अभिनयदर्पण में नाट्य का लक्षण देते हुए लिखा है कि– किसी पौराणिक एवं प्राचीन चरित पर आधारित ऐसी कथा के अभिनय (नटन) को नाट्य कहा जाता है, जो लोक सम्पूजित हो–नाटच तत्राटकं चैव पूज्यं पूर्वकथायुतम्'' इससे पूर्व आचार्य भरत ने भी कहा है कि सुख–दुःख से समन्वित लोक के स्वभाव को विभिन्न आंगिक अभिनयों द्वारा प्रदर्शित करना ही नाट्य है।[13] अमरकोशकार अमरसिंह के अनुसार नृत्य, गीत, एवं वाद्य उन तीनों के समुच्चय को (तौर्यत्रिकं नृत्यगीतवाद्यं नाट्यमिद त्रयम्।) नाट्य कहते हैं।इसके अतिरिक्त चारों वेदों के उपजीव्य होने कारण नाट्यवेद को पंचम वेद के रूप में जाना जाता है। नाट्यशास्त्र में उपलब्ध नाट्योद्गम का इतिहास सम्भवतः विश्व में प्राप्त नाट्य कला के उद्गम का सर्वाधिक प्राचीन विवरण हैं। नाट्यशास्त्र के अनुसार वैवस्वत मन्वन्तर के त्रेता युग के आरम्भ में जब लोग काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या एवं सुख–दुःखादि से अभिभूत हो गए थे, उस समय इन्द्र आदि देवताओं ने ब्रह्मा जी के पास जाकर कहा 'हम लोग ऐसा क्रीडनीयक (मनोरंजन) चाहते हैं जो दृश्य एवं श्रव्य दोनों हो'। तत्पश्चात् ब्रह्मा जी ने चारों वेदों का संकल्प करके पंचमवेद का निर्माण किया। इस पञ्चमवेद के लिए उन्होंने 'ऋग्वेद' से पाठ्य (सम्वाद), सामवेद से गीत (संगीत), यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से श्रृंगारादि रसों का संकलन किया'–

जग्राह पाठ्यंऋग्वेदात्सामेभ्यो गीतमेव च।

यजुवैदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।।

वैदिक युग में नाट्य कला का विकसित एवं समृद्ध रूप दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद काल में नृत्यकला का इतना प्रचार हो चुका था कि– उषा का वर्णन करते हुए ऋषिगण उसकी उपमा एक नर्तकी से देते रहे । इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में ऐसे अनेक सूक्त पाऐ जाते हैं जो 'संवाद–सूक्त' कहे जाते हैं जिसमें नाट्यशैली का संवाद उपलब्ध है। कीथ ने इन संवादों को आख्यान कहा है। इन सूक्तों की संख्या अनिश्चित है, किन्तु लगभग 15 सूक्त ऐसे हैं

© SHARAD

जिनका संवाद स्पष्ट है और जिनमें कुछ सूक्त अत्यन्त महत्वपूर्ण है।[14] इन सम्वाद सूक्तों में दो व्यक्तियों के मध्य वार्तालाप का वर्णन है जैसे पुरूरवा–उर्वशी संवाद,[15] यम–यमी संवाद,[16] इन्द्र–इन्द्राणी–वृषाकपि संवाद,[17] सरमा–पाणि संवाद,[18] विश्वमित्र–नदी,[19] आदि प्रमुख है। हर्टल के अनुसार ये दैनिक संवादसूक्त रहस्यात्मक अभिनय है। इन्हीं प्रमाणों के आधार पर मैक्समूलर ने अनुमान लगाया है कि भारतीय नाट्य के आदिस्रोत वेदों में उपलब्ध कर्मकाण्ड के मंत्र हैं। उनकी धारणा है कि यज्ञों के अवसर पर इन्द्र और मरुत का प्रतिनिधित्व करने वाले दो पक्ष, जो परस्पर संवाद करते थे, वही कथोपकथन भारतीय नाटक का प्रारिम्भक रूप था।[20] सैलवेन लेवी [21] ने मैक्समूलर के मत का अनुमोदन करते हुए कहा है कि वैदिक काल में भारत में नृत्य और संगीत कला पूर्ण रूप से उन्नत हो चुक थी। ओल्डेनबर्ग[22] का कथन और भी महत्वपूर्ण है। उनका अनुमान है कि वैदिक संवाद इण्डो–यूरोपियन काल के विवरण के सूचक हैं और मूलतः ये संवाद गद्य–पद्यात्मक थे। पद्यभाग भावप्रदर्शन का साधन होने से सावधानी से विरचित और सुरक्षित रहे, किन्तु गद्यांश पद्यभागों को केवल श्रृंखलाबद्ध करने के निमित्त प्रयुक्त होते थे, अतएव अनिश्चित और अरक्षित बने रहे, अतः संहिताकाल में विलुप्त हो गए। पंचमवेद के लिए गीत संगीत का संकलन सामवेद से किया गया है। सामवेद को भारतीय संगीत का मूल स्रोत माना गया है। वेदमंत्रों के उद्गाता साम (संगीतपरक वाणी) द्वारा देवताओं को प्रसन्न करते थे। यज्ञ के अवसर पर अध्वर्यु वीणा के साथ संगीत और नृत्य भी किया जाता था। इस दृष्टि से सामवेद भारतीय संगीतशास्त्र का उद्गम है और उसी से पितामाह ने नाट्यवेद के लिए गीत का आधार ग्रहण किया। सामवेद से ही गान्धर्व वेद की उत्पत्ति हुई और गान्धर्ववेद से सोलह हजार राग–रागनियों का जन्म हुआ।[23] यजुर्वेद में यज्ञों का विधान है। 'यजुष्' शब्द का अर्थ पूजा एवं यज्ञ है। जिस प्रकार ऋग्वेद के मंत्रों का प्रधान विषय यज्ञ–विधियों को संपन्न करना है। वेदों में यज्ञों से कलाओं की उत्पत्ति मानी गई है। अभिनय भी एक कला है, जिसका एकमात्र उद्गम स्रोत यजुर्वेदहै। यजुर्वेद की ऋचाओं के इन भावनात्मक एवं आंगिक संकेतों तथा हाव–भावों के आधार पर अभिनय के विभिन्न रूपों का विकास हुआ। पंचमवेद के लिए यजुर्वेद से अभिनय का आधार, यज्ञ–विधियों के समय निष्पन्न, ये ही मूक भावात्मक प्रक्रियाएं तथा आंगिक संकेत देते हैं। वैदिक कर्मानुष्ठानों को सम्पादित करने वाली यजुर्वेद की बहुसंख्यक ऋचाओं में अभिनय कला के सभी तत्त्व विद्यमान हैं।[24] अथर्ववेद से नाट्यशास्त्र के लिए रस को लिया गया। अर्थवेद के इस अंगिरस भाग के अन्तर्गत ऋचाओं के सम्पादन के लिए विशेष क्रियाओं का विधान है। प्रत्येक क्रिया के लिए अलग–अलग प्रतीक है। इन प्रतीकों के पृथक–पृथक अभिचार हैं। मंत्र सिद्धि के लिए इन विशिष्ट अभिचारों का प्रयोग किया जाता है। इन अभिचारों क प्रयोग करते समय जिन भावों तथा उद्वेगों का उदय होता है, वे ठीक वैसे ही होते हैं जैसे रस प्रक्रिया अथवा रस निष्पति के विभावादिकों का अभिव्यंजन होता है। भावोद्वेग द्वारा रस निष्पति के आधार को लेकर अथर्ववेद से नाट्यवेद के लिए रस सामग्री का संग्रह किया गया।[25]

उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर दासगुप्त[26] का कथन है कि इसे स्वीकार करने में किसी को भी आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि वैदिक मन्त्रों में नाटकीय तत्त्व विद्यमान हैं और तत्कालीन धार्मिक संगीत और नृत्य के साथ नाटक का सम्बन्ध अवश्य रहा है। ऋग्वेद में कुछ ऐसे सूक्त पाए जाते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि वैदिक कर्मकाण्ड या अनुष्ठानिक विधियों में नाटकीय तत्त्व अन्तर्हित है ।

याज्ञिक अनुष्ठान में केवल मंत्र–गान एवं स्तुति पाठ ही सम्मिलित नहीं था, बल्कि कुछ रोचक संवाद भी होते थे, जिनमें नाटकीय प्रदर्शन के तत्त्व भी निहित है। जो संभवतः जन–समाज के मजोरंजन के लिए किए जाते रहे होंगे। सोम–यज्ञ के लिए किए जाने वाले सोम–क्रिया की विधि में इसका रोचक दृष्टान्त मिलता है। कतिपय विवरणों में सोम–विक्रेता अनुष्ठान की समाप्ति पर दाम से वंचित किया गया, और पीटा गया है या ढेलों से मारा गया है।[27] ऐसी दशा में संदेह नहीं हो सकता कि यहां पर सोम–व्यापार के निषेध का प्रतिबिंब नहीं बल्कि संरक्षक गंधर्वो से सोम प्राप्त करने का नाटकीय वृत्तांत मिलता है। वैदिक कर्मकाण्ड का एक महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान 'महाव्रत' है। यह अनुष्ठान शीतकालीन सूर्य को शक्तिशाली बनाने के उद्देश्य से किया जाता है, जिससे वह अपना ओज पुनः ग्रहण कर सके और धरती को उपजाऊ बना सके। इसमें सूर्य (गौरव वर्ण वैश्य) और शीत (कृष्णवर्ण शूद्र) के मध्य के एक रोमांच उपाख्यान प्राप्त होता है।[28] इस अनुष्ठान में नाट्य के समान ही नाटकीय तत्त्व उपलब्ध होता है।

© SHARAD

सोमयोग के महाव्रत के अनुष्ठान में ब्रह्मचारी और पुंश्रचली गणिका का एक लोकप्रिय रोचक उपाख्यान प्राप्त होता है, जिसमें ब्रह्मचारी और पुंश्चली गणिका परस्पर आरोप–प्रत्यारोप करते हुए, ताने मारते हुए तथा एक–दूसरे को उलाहना देते हुए वाक्य प्रयुक्त करते हैं।[29] यजुर्वेद में एक रंगशाला का वर्णन मिलता है। जिसे 'सभा' कहते है।उसमें नृत्य के लिए सूत को, गीत के लिए शैलूष को, हंसाने के लिए विदूषक को, प्रसाधन के लिए कलाकरों तथा वीणावादक, दुन्दभिवादक, वंशीवादक, एवं तालधारी आदि को नियुक्त किया गया था।[30] ऐतरेय आरण्यक में सोमयोग में सामूहिक नृत्य का वर्णन है, जिसमें तीन से छः स्त्रियां सिर पर जलभरी गगरी रखकर वर्तुलाकार गति से नृत्य करती थीं।[31]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि– ऋग्वेद मे संवाद, सामवेद में गीत, यजुर्वेद में अभिनय तथा अथर्ववेद में रस, विवृति समाहित है। इन चारों तत्त्वों को ग्रहण कर नाटक की चरम उपलब्धि जीवन के सुव्यवस्थित और कलात्मक रूप का सक्षात्कार कराने में वेद सफल रहे हैं। अस्तु वेदों के आधार पर नाट्य धर्मिता का अन्वेषण उपादेय ही नहीं, अनिवार्य भी है।

सन्दर्भ सूची

1. मैक्समूलर– 'चिप्स फ्राम ए जर्मन वर्कशाप', जि0 1, पृष्ठ4।
2. विमला देवी राय, वेदकालीन समाज और संस्कृति, कला प्रकाशन, वराणसी, 2005, पृष्ठ 10।
3. शिवदत्त ज्ञानी, वेदकालीन समाज, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1997, पृष्ठ 36।
4. ऋग्वेद, 1/1/1–2, 10/90।
5. शिवदत्त ज्ञानी, वेदकालीन समाज, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1997, पृष्ठ 36।
6. वही, पृष्ठ 37।
7. वही, पृष्ठ 37।
8. वही, पृष्ठ 38।
9. मैकडॉनेल, हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृष्ठ 185–186।
10. अथर्ववेद 3/4/2, 7/ /1–/ , 2/31/33 आदि।
11. कीथ, संस्कृत ड्रामा, पृष्ठ 23–24।
12. नाट्यशास्त्र, 1/118।
13 नाट्यशास्त्र, 1/119।
14. नाट्यशास्त्र, 1/17।
15. पारसनाथ द्विवेदी, नाट्यशास्त्र, का इतिहास, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 2012,पृष्ठ 23–24।
16. नाट्यशास्त्र, 10/95।
17. नाट्यशास्त्र, 10/10।
18. नाट्यशास्त्र, 10/96।
19. नाट्यशास्त्र, 1/108।
20. नाट्यशास्त्र, 3/33।
21. मैक्स मूलर, वर्जन ऑफ द ऋग्वेदा, वॉल्यूम 1, पेज.173।
22. सैलवेनी, थिएटर इण्डियन, 1890, पेज 307–308।
23. वाचस्पति गैरोला, भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनयदर्पण, संवर्तिका प्रकाशन, 1997,पृष्ठ58।

© SHARAD

24.वही, पृष्ठ 61।
25. वही, पृष्ठ 62।
26. ओल्डेनबर्ग इन जेड.डी.एम.जी, पेज 54।
27. एस. एन. दास गुप्ता और एस. के दे, संस्कृत साहित्य का इतिहास, 1947, पृष्ठ 44।
28. कीथ, संस्कृत ड्रामा, पृष्ठ 13।
29. कीथ, संस्कृत नाटक, भारतीय नाट्यशास्त्र, स्वरूप और परम्परा, पृष्ठ 14।
30. यजुर्वेद, 30/6,8,10,1520।
31. ऐतरेय आरण्यक, 1/1।

****

© SHARAD